# बनास जन

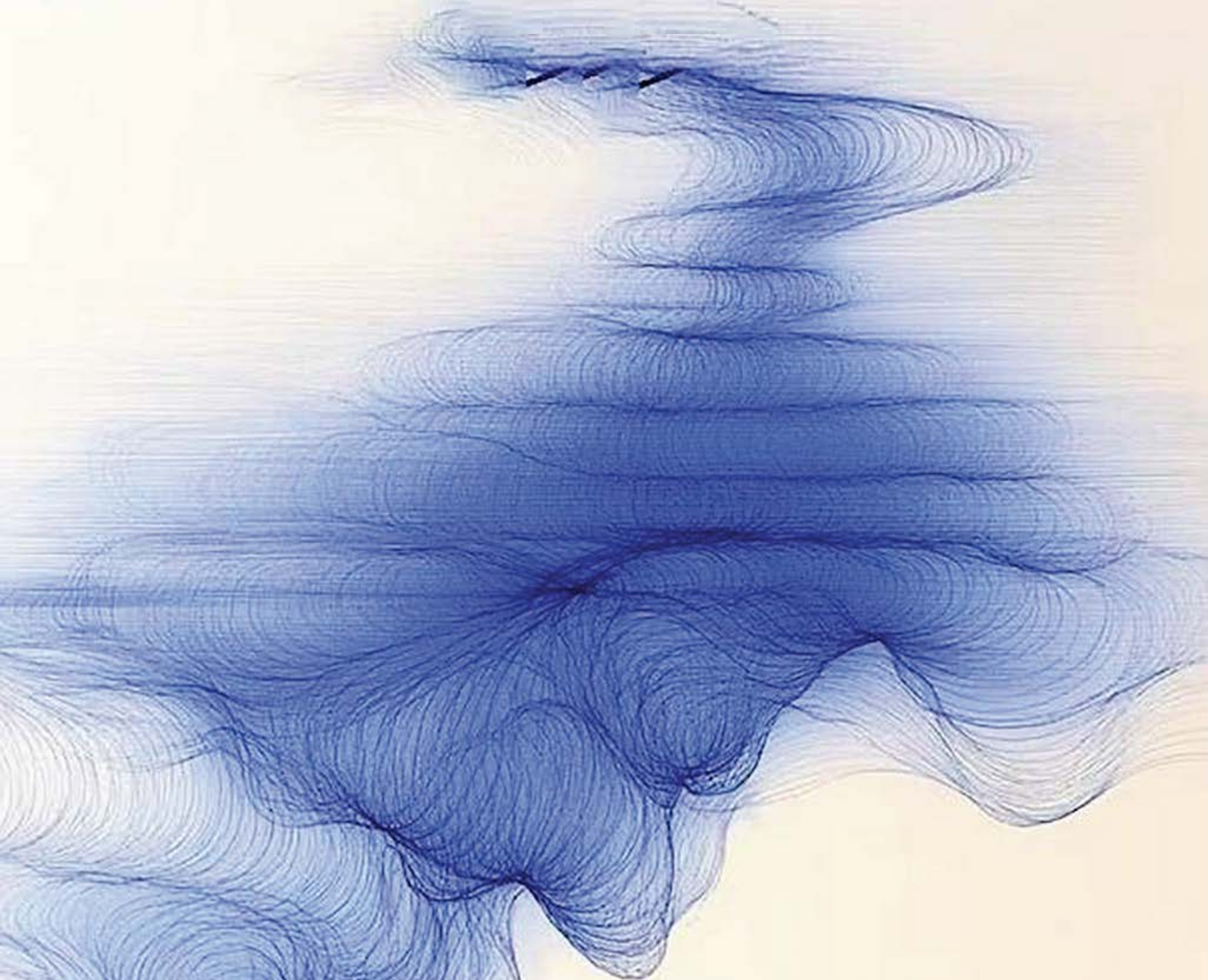

# बनास जन

साहित्य-संस्कृति का संचयन

परामर्श : प्रो. काशीनाथ सिंह, वाराणसी
डॉ. ममता कालिया, दिल्ली
डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, जयपुर
प्रो. माधव हाड़ा, उदयपुर
श्री महादेव टोप्पो, राँची

सम्पादक : पल्लव

सहयोग : गणपत तेली, भँवरलाल मीणा

सहयोग राशि : 150 रुपये (यह अंक)–डाक द्वारा मँगवाने पर–180 रुपये
300 रुपये (संस्थागत)–डाक द्वारा मँगवाने पर–330 रुपये
7000 रुपये–आजीवन (व्यक्तिगत)
12,000 रुपये–आजीवन (संस्थागत)

समस्त पत्र व्यवहार : पल्लव
393, डी.डी.ए., ब्लॉक सी एंड डी
कनिष्क अपार्टमेंट, शालीमार बाग, दिल्ली-110088
ह्वाट्सअप : +91–8130072004 (केवल लिखित संदेश हेतु)
ई-मेल : banaasjan@gmail.com
वेबसाइट : www.notnul.com

कृपया रचनाएँ भेजने के लिए सिर्फ ई-मेल का उपयोग करें। आग्रह है कि इस संबंध में पूछताछ न करें। 'बनास जन' में सभी रचनाओं का स्वागत है।

नोट : प्रकाशित रचनाओं से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं।
संपादन एवं सह संपादन पूर्णतः अवैतनिक।
समस्त कानूनी विवादों का न्याय क्षेत्र दिल्ली न्यायालय होगा।

स्वामी-संपादक-प्रकाशक-मुद्रक पल्लव द्वारा 393, डी.डी.ए., ब्लॉक सी एण्ड डी, कनिष्क अपार्टमेंट, शालीमार बाग, दिल्ली-110088 से प्रकाशित और प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स, झिलमिल इंडस्ट्रीयल एरिया, जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-110095 से मुद्रित।

BANAAS JAN
Peer Reviewed Journal
( A Collection of Literature)

ISSN 2231–6558

# अनुक्रम


| | | |
|---|---|---|
| अपनी बात | | 5 |
| **श्रद्धांजलि** | | |
| इरशाद भाई एक 'जंक्शन' थे | दीपक रूहानी | 9 |
| विजय गौड़ : एक बरगद का असमय सूखना | अरुण कुमार असफल | 12 |
| **शताब्दी स्मरण** | | |
| महाश्वेता देवी के उपन्यासों में इतिहास और समाज | विनोद तिवारी | 17 |
| नीरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती : मैं इसलिए कविता लिखता हूँ | रणजीत साहा | 29 |
| **धरोहर** | | |
| मत बिगाड़ो हमारे घरौंदे | माधव हाड़ा | 40 |
| **देश और उपन्यास** | | |
| देवता मंदिर में नहीं हैं! | रेणु व्यास | 44 |
| **कहानियाँ** | | |
| बुजुर्गवार | संजय व्यास | 56 |
| उस्ताद की शहनाई | सिद्धनाथ सागर | 62 |
| हम मतवाले हिन्दीवाले | ममता कालिया | 104 |
| **कविताएँ** | | |
| तनुज कुमार | | 110 |
| अविनाश मिश्र | | 112 |
| विनोद विट्ठल | | 119 |
| हरिओम राजोरिया | | 123 |
| कुमार अंबुज | | 126 |
| **साक्षात्कार** | | |
| साहित्य में केवल करुणा आपको कहीं नहीं ले जाती, संघर्ष ले जाता है : सुभाष पंत | बिपिन तिवारी, अभिषेक गुप्ता | 129 |

## शोध


| | | |
|---|---|---|
| मीराँ की यात्राएँ | जीवन सिंह खरकवाल | 143 |


## आलोचना भी रचना है


| | | |
|---|---|---|
| साहित्य और समाज से जुड़ाव को गहरा बनाया आलोचना ने | वैभव सिंह | 154 |
| मेरी आलोचना-यात्रा | बजरंग बिहारी तिवारी | 158 |
| मेरे लिखे को आलोचना कहेंगे? | गोपाल प्रधान | 162 |


## कथेतर


| | | |
|---|---|---|
| प्रणव कुमार वन्द्योपाध्याय : बरेली के वे दिन | सुधीर विद्यार्थी | 166 |
| मुम्बई से गोवा | प्रतुल जोशी | 174 |
| बादलों के दिन | अनुराग चतुर्वेदी | 188 |


## कथेतर चर्चा


| | | |
|---|---|---|
| समय और समाज की नब्ज टटोलती किताबें | अनुपम कुमार | 191 |


## समीक्षाएँ


| | | |
|---|---|---|
| शिव कुमार शिव रचनावली : एक नोट | कृष्ण कल्पित | 196 |
| गालियों के वातायन से | सच्चिदानन्द मिश्र | 200 |
| रंगमंच पर भाषा और जुबान का अंदाज-ए-बयाँ कुछ और | राजेश कुमार | 207 |
| आलोचना में नये कदम | आशीष कुमार सिंह | 211 |
| समकालीन कविता के तीन रंग | जगन्नाथ दुबे | 216 |

# अपनी बात

हिन्दी के पहले समाचार पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' के प्रकाशन की द्विशताब्दी का अवसर हिन्दी पत्रकारिता और हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता पर एक निगाह डालने का अवसर भी है। कहना न होगा कि औपनिवेशिक भारत में प्रारम्भ हुई यह यात्रा राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ परवान चढ़ी। भारतेन्दु युग ने साहित्य और पत्रकारिता को अभिन्न बना दिया जिसका प्रभाव स्वतन्त्रता की आधी शताब्दी तक बरकरार रहा। हिन्दी पत्रकारिता की आगे की यात्रा चुनौतीपूर्ण होती गई और जिन मूल्यों से इसका स्वरूप बना था वह धीरे-धीरे तिरोहित होता गया। बाजार और पूँजी का ऐसा दबाव हिन्दी पत्रकारिता पर पड़ा कि उसका मूल चरित्र ही बदलता गया। सवाल पूछने और अपने नागरिकों को लोकतंत्र में शक्ति देना पत्रकारिता का पहला कर्त्तव्य है लेकिन भूमंडलीकरण की आँधी में पहले बहुराष्ट्रीय कंपनियों के विज्ञापनों का आकर्षण और फिर राजनीति का आग्रह पत्रकारिता को समाचार प्रस्तोता तक सीमित करता गया।

हमारे समूचे स्वतन्त्रता संघर्ष के दौरान हिन्दी पत्रकारिता का स्वभाव सत्ता का प्रतिपक्षी बना हुआ था जिसकी आभा बाद तक बनी रही लेकिन धीरे-धीरे इसका चरित्र सत्ता का मुखापेक्षी बनता गया और प्रतिरोध का स्वर विलुप्त होता गया। यदि हम स्वतन्त्रता संघर्ष को राष्ट्रीय आन्दोलन और मुक्ति आन्दोलन कहते हैं तो इसे व्यापक आशय देने में पत्रकारिता की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। हमारे सभी बड़े आंदोलनकारी किसी न किसी अखबार से जुड़े थे और कर्म में शब्द तथा विचार की भूमिका समझते थे।

बहुत दिन नहीं हुए जब अज्ञेय, विद्यानिवास मिश्र, नामवर सिंह, प्रभाष जोशी, राजेंद्र माथुर और मंगलेश डबराल जैसे साहित्य व भाषा के पारखी समाचार पत्रों के सम्पादक होते थे। बाजारीकरण ने पहले इसी संपादक संस्था पर प्रहार किया और फिर तकनीक की सुगमता ने स्थानीय पहचानों को नष्ट कर दिया। समाचार पत्र भी भाषा के संवाहक होते हैं और भाषा के साथ देश की सभ्यता-संस्कृति का संरक्षण भी इनका दायित्व। देखते-देखते हमारे हिन्दी अखबारों ने साहित्य के लिए जगह समाप्त की और हिंगलिश के लिए जगह बनाने लगे। रंगीन पृष्ठों पर आयोजनों-अवसरों के बड़े बड़े सुन्दर चित्रों ने विचार का स्थान छीन लिया। अब समाचार पत्र पाठकों को सूचना भले देते हों लेकिन उन्हें सांस्कृतिक रूप से समृद्ध करना और लोकतंत्र के लिए उन्हें सजग नागरिक बनाने की चिंता पीछे छूट गई है। मनुष्य को महज उपभोक्ता बना देना और मुनाफे को सबसे बड़ी सच्चाई मानना भूमण्डलीकरण की मूल प्रतिज्ञाओं में हैं और हमारे अखबार भी अब इन प्रतिज्ञाओं के लिए अपने को पूरी तरह समर्पित कर चुके हैं।

इसी बीच यदि साहित्यिक पत्रकारिता पर निगाह दौड़ाई जाए तो ज्ञात होता है कि आधुनिक हिंदी साहित्य का जन्म जिन परिस्थितियों और परिघटनाओं के बीच हुआ उनके कारण इस साहित्य की प्रकृति में औपनिवेशिकता का विरोध और स्वतन्त्रता की चेतना अंतर्निहित है। भारतेन्दु युग के साहित्यकारों ने अंग्रेजी साम्राज्यवाद के बावजूद अपने देश की इयत्ता और मुक्ति के बड़े सवालों को साहित्य से जोड़ा। इसी वातावरण में हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता ने जन्म लिया और भारतेन्दु हरिश्चंद्र इसके जन्मदाता माने गए। भारतेन्दु मंडल के लगभग सभी लेखकों ने किसी न किसी साहित्यिक पत्रिका का संपादन और प्रकाशन किया। यह स्पष्ट ही था कि साहित्य की इस पत्रकारिता का उद्देश्य व्यापक ढंग से साहित्य को पाठकों तक पहुँचाना है। आश्चर्य नहीं कि भारतेन्दु के लगभग पचास साल बाद बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पादन में निकल रही 'सरस्वती' पत्रिका न केवल साहित्य अपितु समाज और विज्ञान के विषयों पर भी देश की प्रतिनिधि पत्रिका बन गई जिसने अपने युग के तमाम

स्वप्नों और यथार्थ को अपनी सीमाओं में अनेकानेक पाठकों तक पहुँचाया। सरस्वती ने बताया कि पराधीन लोग भी अपनी भाषा में प्रभावशाली अभिव्यक्ति कर सकते हैं और यह अभिव्यक्ति अपने समय और समाज का सच्चा प्रतिनिधित्व करने वाली हो सकती है। भूलना नहीं चाहिए कि यह वह दौर था जब दैनिक समाचार पत्रों के लिए भी साहित्य एक आवश्यक विषय वस्तु होता था। लगभग सभी दैनिक समाचार पत्रों के सम्पादक साहित्यकार अथवा साहित्य के सुधी लेखक होते थे।

प्रेमचंद के समय साहित्य की पत्रकारिता और अधिक व्यापक हुई और 'हंस' जैसी पत्रिका ने बड़ी संख्या में पाठकों को प्रभावित किया। औपनिवेशिक दौर में स्वाधीनता का स्वप्न इस साहित्य को नयी आभा देता था और इसे सच्चे अर्थों में जनवादी बनाता था। प्रेमचंद जितने बड़े कथाकार थे उतने ही बड़े सजग पत्रकार भी। हंस के साथ जमाना और जागरण में छपे उनके लेख आसानी से उपलब्ध हैं जिन्हें देखने पर उनकी व्यापक दृष्टि का पता चलता है।  देश की स्वाधीनता से पहले इन पाँच दशकों में अनेक छोटी-बड़ी पत्रिकाएँ साहित्यिक पत्रिकाएँ निकलीं जिन्होंने देश भर के हिंदी पाठकों में पहचान बनाई। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, रामविलास शर्मा, यशपाल, अज्ञेय जैसे प्रतिभाशाली लेखक लगातार किसी न किसी साहित्यिक पत्रिका का संपादन-प्रकाशन करते रहे। स्वतंत्रता के बाद के परिदृश्य में नयी कहानी और नयी कविता के आन्दोलनों ने साहित्यिक पत्रिका को गतिशीलता दी। इनके साथ ही उस दौर में श्रीपत राय की पत्रिका 'कहानी', अज्ञेय की पत्रिका 'प्रतीक', बदरीविशाल पित्ती की कल्पना के साथ व्यावसायिक प्रतिष्ठानों से 'धर्मयुग, 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' और 'सारिका' जैसी पत्रिकाएँ भी निकलीं जिन्होंने साहित्यिक पत्रिकाओं का पक्ष मजबूत किया।

सत्तर के दशक में इस स्थिति में बदलाव आया। यह वह समय था जब देश की स्वतंत्रता को भी चौथाई सदी बीत गई थी और नक्सलबाड़ी जैसा आंदोलन भी हो चुका था। भारत और चीन के युद्ध से एक खास तरह की निराशा भी समाज में आ गई थी और लगभग मोहभंग जैसी अवस्था थी। इन दिनों में लघु पत्रिका आंदोलन खड़ा हुआ जिसका लक्ष्य साहित्य और विचार की अभिन्नता था। उन दिनों में 'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' जैसी व्यावसायिक प्रतिष्ठानों से आने वाली पत्रिकाओं को सेठाश्रयी पत्रकारिता कहा जाने लगा था। लेखकों को लगता था कि भले ही इन व्यावसायिक पत्रिकाओं की प्रसार संख्या हजारों में हो लेकिन इनमें हमारी रचना छपकर अपने वास्तविक अर्थ से दूर हो जाती है क्योंकि इन पत्रिकाओं का मूल चरित्र व्यवस्था की रक्षा करना है। ऐसे में लेखकों ने बड़ी संख्या में छोटी-छोटी पत्रिकाएँ निजी स्तर पर प्रकाशित करना शुरू किया जिसने हिंदी में लघु पत्रिका आंदोलन का स्वरूप ग्रहण किया। ज्ञानरंजन और कमला प्रसाद के संयुक्त सम्पादन में प्रारम्भ हुई 'पहल' इस आंदोलन की सबसे प्रभावशाली पत्रिका बनकर उभरी जो अगली शताब्दी तक प्रकाशित होती रही। लघु पत्रिका आंदोलन ने साहित्य, लेखक और पाठक के त्रिकोण को वैचारिकता से जोड़ा। इस वैचारिकता को व्यापक आशयों में समझना चाहिए। इसके साथ ही यह भी समझना होगा कि समाचार पत्रकारिता में धीरे-धीरे व्यावसायिकता और सत्ता के प्रति निष्ठा बढ़ रही थी जिसके कारण उसका चरित्र संदिग्ध होना शुरू हो गया था। आपातकाल और उसके बाद के दौर के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं जब पत्रकारिता अपने उद्देश्य से दूर होती गई और उसका चरित्र सत्ता का मुखापेक्षी होता गया।

लघु पत्रिका आंदोलन ने समूचे हिंदी प्रदेशों में साहित्य की दुनिया में नया उत्साह पैदा किया। उस दौर में राजस्थान, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश ही नहीं अहिन्दी प्रदेशों से भी हिंदी की लघु पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। इन लघु पत्रिकाओं पहल, वसुधा, कथा, लहर, क्यों, बिंदु, उत्तरार्ध, ओर, अणिमा, सम्बोधन, कारखाना, दस्तावेज,अब, विकल्प जैसी अनेक पत्रिकाएँ थीं जिनके अवदान को बार-बार याद किया जाता है। लघु पत्रिका आंदोलन से प्रभावित और उसे आवश्यक मानने वाले लोगों में अनेक महत्त्वपूर्ण कवि-कथाकार भी थे जिन्होंने अपने प्रयासों से सम्पादन-प्रकाशन किया। अमरकांत, मार्कण्डेय,